International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-04-2022, Accepted: 16-05-2022, Published: 31-05-2022
Volume 8, Issue 3, 2022, Page No. 35-39

वन गुर्जरों का हितरक्षक अर्थात वनाधिकार अधिनियम–2006: वृत्त का अध्ययन

सुभाष भिमराव दोंदे
डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी, पुणे संलग्न किर्ती कॉलेज, दादर (प.) मुंबई, भारत

सारांश
वन आश्रित आदिवासीयों के लिए 'वन' सदियों से आजीविका और भरण–पोषण का संधारणीय स्रोत है। वन संसाधनों पर निर्भर भूमिहीन आदिवासी एवं वन गुर्जरों जैसे घुमंतू चरवाहे इस परिसंस्था के सदियों से मूल निवासी तथा अभिरक्षक है; जिनके गतिविधियों को वन विभाग द्वारा बरसों से क्रूरता पूर्वक प्रतिबंधित और विनियमित किया गया है। किन्तु वन अधिकार अधिनियम, 2006 के अधिनियमित हो जाने के उपरांत वन आश्रितों के साथ अब तक किए गए 'ऐतिहासिक अन्याय' से उनके मुक्ती का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यह क्रांतिकारी अधिनियम वैयक्तिक एवं सामुदायिक वन अधिकारों द्वारा वन समुदायों की आजीविका को सुरक्षित एवं सुनिश्चित करता है। अधिनियम के तहत वनों और प्राकृतिक संसाधनों के संधारणीय उपयोग के लिये स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने का प्रावधान है। खानाबदोश भैंस– चरवाहा 'वन गुर्जर'– देश का एकमात्र मुस्लिम आदिवासी समुदाय है; जो हिमालयी राज्यों की तलहटी में निवास करता हैं; जहाँ के पारंपरिक शीतकालीन चरागाह अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यानों के अंतर्गत आते हैं। भैंसों को चराने के लिये समुदाय द्वारा अपनाया गया 'ऋतु–प्रवास' और घुमंतू जद्दोजहद मुश्किलों से ओतप्रोत है। वन अधिकार अधिनियम के तहत, वन गुर्जर को अधिकार है कि वन क्षेत्र, संरक्षित क्षेत्र में अपने मवेशियों को चरा सकें। उपरोक्त कानून में यह स्पष्ट किया गया है कि उन समुदायों को जो पारंपरिक तौर पर घूम–घूमकर चरवाही करते रहे हैं, उन्हें चरवाही के मौसम में यह अधिकार मिलता रहेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि इन्हें इसकी इजाजत नहीं दी जाती। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तूत अनुसन्धान लेख वनाधिकार अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के दायरे में वन गुर्जर समुदाय की वर्तमान दिशा और दशा के कुछ पहलुओं का वृत्त का अध्ययन (केस स्टडी) के रूप में एक समीक्षात्मक अध्ययन है।

मूल शब्दः वन गुर्जर, वन अधिकार अधिनियम, ऋतु प्रवास, घुमंतू चरवाह, वन आश्रित

प्रस्तावना

भारत में 10 करोड़ से अधिक वन आश्रितों के लिए 'वन' आजीविका और भरण–पोषण का एक स्रोत है। इनमें से 6 करोड़ से अधिक लोग आदिवासी हैं और देश के 60% वन 187 आदिवासी जिलों में हैं। उनमें से एक वन आश्रित है– 'वन गुर्जर' –जो घुमंतू या खानाबदोश भैंस–चरवाहे हैं। यह देश का एकमात्र मुस्लिम वनवासी समुदाय है; जो जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड और उत्तरप्रदेश जैसे हिमालयी राज्यों की तलहटी में निवास करते हैं। वे कई वन आश्रितों में से एक हैं जो भारत में वन आवासों पर गहरी निर्भरता पर रहते हैं और जिनके लिए, 'ट्रान्सहुमन्स' (मौसमी ऋतू चक्र में पशुओं को एक चरागाह से दूसरे चरागाह में ले जाने का अभ्यास) सदियों से जीवन का एक तरीका रहा है। उत्तराखंड में 20,000 से अधिक वन गुर्जर और उत्तर प्रदेश में 2,000 से अधिक हैं। जबकि हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर में उन्हें अनुसूचित जन–जाति (एसटी) का दर्जा दिया गया है; किंतु अभी तक उत्तराखंड में एक अलग समुदाय –मुस्लिम गुर्जरों के तहत वर्गीकृत किया गया है। इस राज्य में उन्हें अनुसूचित जन–जाति का दर्जा नहीं है। आज़ादी के पहले भारतीय जंगलों पर गोरे उपनिवेशवादियों का शासन था; किंतु आजादी के बाद भी, वही राज बरकरार है सिर्फ उपनिवेशवादियों की त्वचा का रंग ही बदल गया है– यह अवलोकन भारत में वानिकी शासन के लंबे इतिहास को अच्छी तरह से सारांशित करता है – जहां ब्रिटिश राज और उत्तर औपनिवेशिक भारतीय राज्य दोनों ने वनों पर निर्भर लाखों पारंपरिक वन आश्रि त आदिवासी और दलित समुदायों की कीमत पर जंगलों को नियंत्रित किया है। भारत वन अधिनियम 1927 का उपयोग करके अंग्रेजों द्वारा सीमांकन के माध्यम से वनों का वाणिज्यिक शोषण और स्वतंत्रता के बाद के भारत के वन संरक्षण कानूनों में एक बात समान थी – वन गुर्जरों जैसे वन आश्रित समुदायों का अन्यसंक्रामण दोनों में एक समान था। औपनिवेशिक मानसिकता ने इस विचार को जन्म दिया कि वनों का वैज्ञानिक प्रबंधन निष्कर्षण की प्रक्रिया में सहायता करेगा, जो विकास के लिए अपरिहार्य था। वन विभाग को देश का सबसे बड़ा भूमि मालिक बनाकर, (कुल भौगोलिक क्षेत्र 23 प्रतिशत) वनों पर पहले राज्य का नियंत्रण निर्धारित हुआ और फिर वनों को उन लोगों से बचाने के लिए वन विभाग को जिम्मेदार बनाया जो लोग इस परिसंस्था के सदियों से मूल निवासी तथा अभिरक्षक थे। उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश के वन गुर्जरों के पारंपरिक शीतकालीन चरागाह अब कॉर्बेट टाइगर रिजर्व, राजाजी राष्ट्रीय उद्यान और गोविंद पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान के अंतर्गत आते हैं। इसके साथ–साथ, केंद्र और राज्य सरकारों ने लगातार मिलकर उन्हें बस्तियों में अवस्थापन करने की कोशिश की है, इस प्रकार वन गुर्जर के लिए केंद्रीय 'चलनशील' या 'घुमंतू' जीवन शैली को प्रतिबंधित कर दिया है। वन अधिकार अधिनियम 2006 के आगमन ने चीजों को बदल दिया है। इन शीर्ष पाद और बहिष्कृत वन और संरक्षण नीतियों के तहत, वन गुर्जर और अन्य चरवाहे, जिनके पास परंपरागत रूप से जमीन नहीं थी, लेकिन वे वन संसाधनों पर निर्भर थे, उन्हें वन भूमि पर 'जंगली', 'अवांछित', 'अतिक्रमणकर्ता' के रूप में देखा जाने

लगा। नियंत्रण की एक प्रणाली अपनाई गई जिसके तहत उनके स्थानान्तरण समय एवं मार्ग तथा प्रति परिवार मवेशियों की संख्या की अनुमति दी गई, चराई क्षेत्रों का आवंटन सभी को वन विभाग द्वारा प्रतिबंधित और विनियमित किया गया। उनकी उपस्थिति को वन भूमि पर अनुमत 'रियायत' के रूप में देखा जाने लगा, न कि उनके पारंपरिक आजीविका का अधिकार और फिर कभी अधिकृत शुल्क या कभी अनाधिकृत रिश्वत की अदायगी के माध्यम से उनके गतिविधियों को विनियमित किया गया। वन गुर्जर उत्तराखंड के तराई–भाबर और सिवालिक क्षेत्र से गर्मियों में पश्चिमी हिमालय के ऊंचे बुग्यालों (चरागाह भूमि या घास के मैदान) में और सर्दियों में इसके विपरीत मौसमी प्रवास करते हैं। समुदाय द्वारा अपनाए गए 'ऋतु–प्रवास' की घटना कुछ जलवायु परिवर्तन–अनुकूल और लचीलापन रणनीतियों में से एक है जो सुनिश्चित करती है कि उनकी देहाती आजीविका व्यवहार्य और संधारणीय बनी रहे। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की वजह से उत्तराखंड का राजाजी राष्ट्रीय उद्यान की नदियां गर्मियों में सूख जाती हैं, जिससे जंगली जीवों के लिए पानी की कमी हो जाती है। यहां वन गुर्जरों की मौजूदगी जंगली जीव के लिए पानी सुनिश्चित करती है। उनके पास पारंपरिक जल संरक्षण की तकनीक है जिसे 'उग्गल' या 'गोजरी' कहते हैं। इसमें इकट्ठा पानी उनके घरेलू उपयोग के साथ साथ जंगली जीवों के काम भी आता है, उनके आने–जाने की वजह से जंगल में रास्ता बन जाता है, जिसकी वजह से जंगल की आग एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक नहीं पहुंचती है। गर्मियों में वनाग्नि से बचने के लिए ये लोग जंगल पर नजर भी बनाए रखते हैं। वास्तव में, वन गुर्जरों की गतिविधियों जैसे पत्तों को काटना शाकाहारियों के जीविका को सक्षम बनाता है। यह कटे हुए पेड़ों के स्वस्थ विकास और घनत्व को भी बढ़ावा देता है। वन गुर्जरों और उनकी भैंसों की घूर्णी चराई भी तटबंधों के माध्यम से जल स्रोतों को बनाए रखने में मदद करती है, आक्रामक प्रजातियों को हटाती है, बीज फैलाव में सुविधा प्रदान करती है, चराई क्षेत्रों और रास्तों का पुनर्मूल्यांकन करती है और अन्य प्रजातियों के लिए पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा के लिए जंगलों के भीतर आग की रेखाएं बनाती है। शहरी पर्यावरणविदों द्वारा वनों पर निर्भरता की धारणा प्रमुख संघर्षों को जन्म दे रही है क्योंकि वे अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यानों, बाघ प्रकल्प और जलोत्सारण क्षेत्रों की सुरक्षा संबंधी नीतियों एवं अधिनियमोंका समर्थन करते हैं, जो सीधे तौर पर वनों पर अधिक निर्भर लोगों जैसे की वन गुर्जरों की आजीविका और खानाबदोश चरवाह की जीवनशैली को प्रभावित करती हैं। 2008 में वन अधिकार अधिनियम की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाली वन्यजीव ट्रस्ट और अन्य बनाम भारत संघ ना दर्ज मसे एक याचिका इसी शहरी सोच का प्रमाण है। राइट्स एंड रिसोर्स इंस्टीट्यूट की एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्वभर में 13.6 करोड़ लोगों का विस्थापन प्राकृतिक संरक्षण की वजह से हुआ है। रिपोर्ट के मुताबिक जैव–विविधता बचाने के नाम पर विस्थापन, मानव अधिकारों का हनन और सशस्त्र हिंसा की जा रही है।

परिकल्पना

वन संपदा का संधारणीय प्रबंधन तथा वन गुर्जर सहित तमाम देशज, आदिवासी और वन आश्रितों के वैयक्तिक एवं सामुदायिक हित बिरादरी वानिकी को प्रोन्नत करने वाले वनाधिकार अधिनियम 2006 के सफल कार्यान्वयन में निहित है। इसलिए इसे कमजोर या बेअसर बनाने की हर एक कोशिश का डटकर सामना करना और हर हाल में इस क्रन्तिकारी अधिनियम का न्यायसंगत क्रियान्वयन यह वक्त की मांग है।

क्रियाविधि

वन अधिकार अधिनियम, 2006 के दायरे में वन गुर्जर समुदाय की वर्तमान दशा को वृत्त का अध्ययन (केस स्टडी) के रूप में प्रस्तूत यह अध्ययन, एक परिव्यापक, असंरचित और गैर–संख्यात्मक डेटा पर निर्भर रहकर प्राथमिक एवं प्रकाशित साहित्य या डेटा का गुणात्मक एवं समीक्षात्मक विश्लेषण है।

विचार विमर्श

वन गुर्जरों के चरागाहों को राष्ट्रीय उद्यानों, बाघ अभयारण्यों और वन्यजीव अभयारण्यों में बदल दिया गया, लेकिन इन जनजातियों ने अपने खानाबदोश जीवन शैली को जारी रखा। वन गुर्जरों ने हमेशा अपनी भैंसों की भलाई या सुख के खातीर ही अपनी घुमंतू जीवन शैली को संजोये रखा है। गर्मी की शुरुआत शिवालिक और तराई की गर्म जलवायु में उनके पशुओं के लिए असहनीय स्थिति बनाती है। इसके अलावा, शुष्क मौसम के साथ घास के आवरण की कमी इन क्षेत्रों को जंगल की आग के प्रति संवेदनशील बनाती है। इसी तरह, सर्दियों में बर्फबारी समुदाय को वापस मैदानी इलाकों में धकेल देती है, जहां वे अंततः उन चरागाहों तक पहुंच सकते हैं जिन्हें फिर से तैयार किया गया है। उनके इस 'चलवासिता' या खानाबदोशी पर राज्य के भीतर समय–समय पर वन विभाग ने फटकार लगाई है। वन गुर्जरों के पास उनके गर्मियों और सर्दियों के घरों में वैध परमिट हैं। लेकिन वन विभाग ने साल दर साल अनुमति लेने और मवेशियों की चराई की सीमा निर्धारित करने की अनौपचारिक व्यवस्था कर दी थी। वन विभाग द्वारा निर्धारित इस तरह की पूर्व–शर्तों का उल्लंघन करने के लिए कई वन गुर्जरों को अक्सर दंड और जुर्माना देना पड़ता था। हालाँकि, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 या वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) के आगमन ने चीजों को बदल दिया है। सामुदायिक वानिकी के सिद्धांत पर आधारित वन अधिकार अधिनियम 2006 का वैचारिक ढांचा प्राकृतिक संसाधनों के राज्य नियंत्रित केंद्रीकृत प्रबंधन से प्रमुख प्रतिमान स्थानांतरण है (पैराडाइम शिफ्ट) दुनिया भर में स्विकृत प्राकृतिक संसाधनो के विकेन्द्रीकृत प्रबंधन का दृश्य परिणाम है। इस अधिनियम ने यह सुनिश्चित किया है कि चरागाहों के पास भी सामुदायिक वन संसाधन के बदले चरागाहों तक पहुँचने का अधिकार है जिसके वे पात्र हैं। धारा 2 (ए) एक गांव की पारंपरिक या प्रथागत सीमाओं के भीतर प्रथागत आम वन भूमि पर चारागाही समुदायों के अधिकारों के लिए निर्धारित करती है। यह चारागाही समुदायों के मामले में एक भूदृश्य के समयानुकूल उपयोग को भी निर्धारित करता है, जिसमें अवर्गीकृत वन, आरक्षित वन, गैर–सीमांकित वन, मानित वन, संरक्षित वन, अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यान शामिल हैं। दुर्भाग्य से, कानून के बारे में जागरूक होने के बावजूद, उनके वैध भूमि दावों को दृढ़ता से कहने में असमर्थता के साथ–साथ वन विभाग द्वारा कानून की अवहेलना के परिणामस्वरूप इन घुमंतू वनवासियों के

अधिकारों की अपर्याप्त मान्यता हुई है। पिछले दशक के दौरान, वन विभाग द्वारा वन गुर्जरों के लिए उनके चरागाहों को संरक्षित क्षेत्र घोषित करने या अतिक्रमण के आधार पर प्रवेश प्रतिबंधित करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। एफआरए का प्रभावी क्रियान्वयन इस क्षेत्र में वन गुर्जर चरवाहों की सामुदायिक पहुंच और कार्यकाल को मान्यता देने की एकमात्र उम्मीद है। हालाँकि, इन अधिकारों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने के लिए, समुदाय को न्यायिक सहायता पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। चराई वाले चरागाहों तक पहुंच को एक अधिकार के रूप में महसूस किया जाना चाहिए। क्रमाचार या प्रोटोकॉल का हवाला देते हुए नौकरशाही की बाधाएं नहीं खड़ी की जानी चाहिए। बल्कि, एक उपनिवेश से मुक्त दृष्टिकोण समय की मांग है। एफआरए में कई मोर्चों पर आदिवासी और अन्य वनवासी लोगों को सशक्त बनाने में एक जबरदस्त, हालांकि अक्सर अप्रयुक्त क्षमता है। सबसे पहले, यह व्यक्तिगत भूमि अधिकारों को मान्यता देकर और वन कॉमन्स पर सामुदायिक अधिकार प्रदान करके वन निवासी समुदायों को वित्तीय रूप से सशक्त बनाता है। (गैर लकड़ी) लघु वनोपज द्वारा उत्पन्न विशाल राजस्व के प्रबंधन का यह पुनर्गठन – पहले राज्य वन विभागों के दायरे में था किन्तु अब इन संसाधनों के सामुदायिक स्वामित्व के साथ–साथ आय उत्पन्न करने में मदद मिली है और वनों के न्यायसंगत निवासियों को अतिक्रमण के लिए जुर्माना लगाने से रोका गया है। दूसरा, ग्राम सभाओं की सहमति की आवश्यकता पर एफआरए का जोर – एक ग्राम परिषद जिसमें समुदाय के सभी वयस्क सदस्य शामिल हैं – संयुक्त वन प्रबंधन (जेएफएम) कार्यक्रमों से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान रहा है। 1990 के दशक के जेएफएम कार्यक्रमों का पुनः आविष्कार केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा वन विभाग द्वारा नियुक्त ग्राम वन समितियों के रूप में किया गया था, जहाँ सहमति के बजाय परामर्श पर जोर दिया जाता है। तीसरा ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए एफआरए की मौलिक – भूल सुधारात्मक क्षमता भारत में भूमि स्वामित्व के संबंध में लिंग भेदभाव से जुड़े अन्याय के निवारण के लिए विशेष रूप से अनुकूल है। भारत में भूमि स्वामित्व के अन्य पितृवंशीय नियमों के विपरीत, एफआरए महिलाओं को उनके पुरुष समकक्षों के रूप में वनभूमि और सामुदायिक वन संसाधनों के समान अधिकार के रूप में मान्यता देने में विलक्षण है। इसने विवाहित महिलाओं के साथ–साथ विधवाओं, एकल महिलाओं और बहुपत्नी प्रथा के परिणामस्वरूप आर्थिक सुरक्षा से वंचित महिलाओं को काफी सशक्त बनाया है। अंत में, प्राकृतिक संरक्षण प्रयासों में स्वदेशी समुदायों के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार करने में एफआरए की पारिस्थितिक दूरदर्शिता को याद रखना महत्वपूर्ण है, जिसे 2018 में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र अंतर–सरकारी पैनल द्वारा भी मान्यता दी गई थी। प्राकृतिक संरक्षण समूहों और सेवानिवृत्त वन नौकरशाहों के एक कुलीन वर्ग द्वारा 2008 में एफआरए की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए वन्यजीव ट्रस्ट और अन्य बनाम भारत संघ नामसे एक याचिका दर्ज की गयी थी । एफआरए के खिलाफ इस याचिका में 2008 से कई उलटफेर किए गए हैं। शुरू में एफआरए की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने के बाद, याचिकाकर्ता उन लोगों को बेदखल करने की मांग करते हैं; जिनके व्यक्तिगत और सामुदायिक वन अधिकारों के दावों को एफआरए के तहत अस्वीकार कर दिया गया है। याचिका का मूल दावा – आदिवासियों और अन्य वनवासी समुदायों को पर्यावरण के लिए हानिकारक के रूप में प्रस्तुत करना – प्राकृतिक संरक्षणवादियों के रूप में उनकी सफलता के बढ़ते सबूतों के सामने पूरी तरह से भ्रामक या गलतफहमी पैदा करनेवाला है। इसके अलावा, यदि सफल होता है, तो एफआरए को भंग करना, और समुदाय–सहमति आधारित लोकतांत्रिक वन शासन का मॉडल निगमों द्वारा वनों को 'हरियाली हथियाने' का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। हाल ही में, यह क्षतिपूरक वनीकरण कोष (सीएएफ) अधिनियम (2016) द्वारा किया जा रहा है, जो खनन और निर्माण जैसे गैर–वानिकी उद्देश्यों के लिए वन भूमि के विपथन की अनुमति देता है, जब तक कि परियोजना को पूरा करने वाले प्रतिपूरक वनरोपण की लागत वहन करते हैं। यह सक्रिय रूप से एफआरए को कमजोर करता है क्योंकि क्षतिपूरक वनीकरण के लिए धन वन नौकरशाही के हाथों में है, न कि ग्राम सभाओं के हाथों में। इसके अलावा, एफआरए के विपरीत, सीएएफ अधिनियम केवल व्यक्तिगत भूमि कार्यों को मान्यता देता है, इस प्रकार कमजोर स्वदेशी समुदायों के सामुदायिक वनभूमि में प्रतिपूरक वनीकरण गतिविधियों की अनुमति देता है। सीएएफ अधिनियम न केवल एफआरए द्वारा सुनिश्चित किए गए सामुदायिक वन अधिकारों को स्वीकार करने से इनकार करता है और ग्राम सभाओं के लिए सहमति की आवश्यकता को कम करता है, यह एकल कृषि या मोनोकल्चरल वृक्षारोपण को वनों के रूप में गिना जाने की अनुमति देकर एक विकृत पारिस्थितिक दृष्टिकोण को अपनाता है। 2018 की राष्ट्रीय वन नीति के मसौदे में भी 'वन उत्पादकता बढ़ाने' के नाम पर वन प्रबंधन के एक सार्वजनिक–निजी मॉडल की अनुमति देकर, वनों के वित्तीयकरण की ओर समान झुकाव प्रदर्शित किया गया था, जो इसके सही मालिकों–स्थानिक और पारंपरिक आदिवासियों एवं जनजातियों की भूमिका की अवहेलना करता है। केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने भारतीय वन अधिनियम (1927) में खतरनाक संशोधनों का प्रस्ताव करते हुए एक मसौदा भेजा। ये राज्य के वन विभागों को कई तरह से अदम्य शक्ति प्रदान करेंगे। स्थानिक आदिवासियों एवं जनजातियों के अधिकार छीने जा सकते हैं यदि विभाग उन्हें अपने संरक्षण के उद्देश्यों का उल्लंघन करता हुआ पाता है। संशोधन वन अधिकारियों को प्रतिरक्षा की भी अनुमति देता है यदि वे अतिक्रमण या उल्लंघन करने वालों के खिलाफ हथियारों का उपयोग करते हैं। वनों के वित्तीयकरण के अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए, संशोधन वाणिज्यिक वनों की एक नई कानूनी श्रेणी स्थापित करने और निजी फर्मों की भागीदारी के माध्यम से उत्पादन वनों को बढ़ावा देने का भी प्रयास करता है। ये सभी पारिस्थितिक और सुधारात्मक न्याय के उल्लंघन में हैं जिसकी गारंटी एफआरए ने मांगी है। हालांकि, एफआरए, जो एक अधिक्रमण अधिनियम है – इसे अन्य कानूनों द्वारा रौंदा नहीं जा सकता है–ऐसे कमजोर विरोधी कानूनों के कार्यान्वयन में यह एक महत्वपूर्ण कांटा रहा है। एफआरए को कमजोर करने वाली ग्यारह साल पुरानी याचिका; जिसकी कानूनी वैधता अत्यंत विवादास्पद है; इस याचिका के पक्ष में बेदखली या निष्कासन का आदेश यह बता रहा है कि एफआरए परोपकारी एवं आदिवासी और स्थानिक जनजाति हितैषी एक सशक्त अधिनियम है। भारत में पहले से ही बहुत सारे राज्य सरकारों ने यह स्वीकार करते हुए हलफनामा प्रस्तुत किया है कि एफआरए के तहत किए गए दावों की अस्वीकृति त्रुटिपूर्ण और गलत है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देश के कुछ सबसे अनिश्चित लोगों को उनके पैतृक घरों से बेदखल करने की जल्दबाजी, बिना किसी उचित प्रक्रिया की परवाह किए, भारत और वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों और पर्यावरण रक्षकों की संघटन और एकजुटता का आव्हान करती है। स्वीडन के लुंद विश्वविद्यालय से सेवानिर्वृत्त वरिष्ठ प्रोफेसर पर्निल गूच ने हिमालय क्षेत्र

में चरवाहों का अध्ययन किया है। वह मानते हैं कि जंगल में वन गुर्जर और प्रकृति के बीच जो पारंपरिक सौहार्दपूर्ण संबंध था वही आज उनका दुश्मन बन गया है। अब उन्हें मौसम के बदलने पर जानवरों के साथ ऊंचाई पर या जंगल की दूसरे छोर पर जाने की इजाजत नहीं होती। गूच कहते हैं कि ये लोग जीवन तो जी रहे हैं पर वन गुर्जर की तरह नहीं। वनाधिकार कानून के धारा (4) के अनुसार किसी स्थान को वन्यजीवों के संरक्षण–स्थल की घोषणा करने में स्थानीय समुदाय की सहमति जरूरी है। इसके अलावा वैज्ञानिक तौर पर यह साबित करना होगा कि उस स्थान पर इंसान और वन्यजीव एकसाथ नहीं रह सकते और वन पर अधिकार दिया गया तो वन्यजीवों का अस्तित्व संकट में आ जाएगा। वनाधिकार कानून यह नहीं कहता कि आदिवासियों का विस्थापन नहीं हो सकता। इसका मकसद कानूनी तौर पर वन्यजीव और इंसानों के साथ रहने और जंगल के संरक्षण की संभावनाओं को तलाशना है। जब कोई और उपाय न बचे तब विस्थापन किया जाए–पर सबकी सहमति से। यहाँ तक कि वनों को एकदम प्राचीन अवस्था में बनाये रखने का आग्रह अवैज्ञानिक है; जो मानव–वन्यजीव सह–अस्तित्व की संभावना को समाप्त करता है। अगर आप किसी गुर्जर से उनकी जरूरत पूछेंगे तो वह जमीन मांगेगे। क्योंकि वह काफी असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। उनके मवेशियों के लिए मौजूदा संसाधन काफी नहीं है। भैंसों को चराने के उनका पुराना तरीका अब चलन में नहीं है। वे मौसम के साथ जंगल में स्थान बदलकर मवेशी चराते थे, जो कि अब संभव नहीं हैं। भूमि के कानूनी अधिकारों के बावजूद उत्पीड़न एक कड़वा सत्य है। वन अधिकार अधिनियम के तहत, वन गुर्जर को अधिकार है कि वन क्षेत्र, संरक्षित क्षेत्र में अपने मवेशियों को चरा सकें। उपरोक्त कानून में यह स्पष्ट किया गया है कि उन समुदायों को जो पारंपरिक तौर पर घूम–घूमकर चरवाही करते रहे हैं, उन्हें चरवाही के मौसम में यह अधिकार मिलता रहेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि इन्हें इसकी इजाजत नहीं दी जाती।वनाधिकार कानून इस उद्देश्य से लाया गया था कि देश में करीब दस करोड़ वनवासियों के साथ हो रहे भेदभाव को खत्म किया जा सके। इसके विपरीत पूरी कोशिश हो रही है कि उन्हें और कमजोर किया जाए। चरवाही के मौसम में वन विभाग निगरानी तेज कर देता है। खासकर उन क्षेत्र में जहां वन गुर्जर और अन्य अनुसूचित जनजाति के लोग मवेशियों को चराने ले जाते हैं। वन्यजीवों को पार्क की सीमा में रखना आसान नहीं है। राजाजी नेशनल पार्क के आसपास वन्यजीव और इंसानों के टकराव की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। इनको डर है कि हाथियों का चक्कर बढ़ने की वजह से भविष्य चारागाह की जमीन पर किसानो का हक समाप्त न हो जाए। यह इलाका पहले से ही आघात–भंजक क्षेत्र (बफर जोन) घोषित किया गया है। अगर कभी वन विभाग यहां से गुर्जरों को विस्थापित करेगा, तो इंसान और मवेशी की कमी की वजह से यहां हाथियों का चक्कर बढ़ जाएगा। इससे खेती को नुकसान होगा।

उपसंहार

विकास परियोजनाओं के मामले में प्राकृतिक विनाश को सीधे तौर पर नजर अंदाज किया जाता है; किन्तु ऐसी परियोजनाओं में बाधा बनने वाले दुर्बल वन आश्रितों को विस्थापित किया जाता है। तब यह सवाल उठता है कि क्या विकास परियोजनाओं की क़ीमत सिर्फ अधिकारहीन देशज जनजातियों को ही चुकानी पड़ेगी? वन गुर्जरों के जंगल पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने वाले और उनके खिलाफ आवाज उठाने वाले शहरी पर्यावरणविद और संरक्षण जीवविज्ञानी जब कभी जंगलों में सड़क, हवाई अड्डे बनाये जाते हैं और बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण होती है, तब सब के सब चुप्पी साध लेते है। सवाल खड़ा होता है कि यह प्राकृतिक संरक्षण किसके लिए किया जा रहा है? क्या उन पर्यटकों के लिए है; जो इन सड़कों और हवाई अड्डों का इस्तेमाल करते हुए इन वनों में घूमने आते हैं? ऐसी सड़कें और हवाई अड्डे जो वनों को तहस–नहस करके बनाये जा रहे हैं। क्या प्रकृति केवल एक देखने और तारीफ करने की चीज है? क्या वन गुर्जर या संरक्षित क्षेत्रों के पास के खेती–किसानी करने वाले समुदायों को मुख्य धारा में समाहित कर आगे बढ़ने का हमारा उत्तर दायित्व नही है? ये वो लोग हैं जिन्होंने इन जंगलों को सदियों से बचा कर रखा है। इसलिए भारत की राष्ट्रीय वन–नीति और देश के प्रगतिशील संरक्षण समूहों को पर्यावरण के साथ–साथ बड़े पैमाने पर लोकतंत्र के लिए वनाधिकार अधिनियम जैसे क्रांतिकारी अधिनियम से निर्मित वास्तविक विकेन्द्रीकृत समुदाय के नेतृत्व वाले वन शासन के विशाल लाभों को पहचानना चाहिए। यहाँ तक कि अंतर्राष्ट्रीय नागरिक समाज को भी यह मांग जारी रखनी चाहिए कि भारत सरकार न केवल वनाधिकार अधिनियम जैसे प्रगतिशील कानून को पारंपरिक वन आश्रितों का रक्षक बनाकर उनकी रक्षा करे बल्कि इसके कुशलता पूर्वक और व्यापक कार्यान्वयन को भी सुनिश्चित करे। अब समय आ गया है कि सभी हितधारक एक मंच पर एक साथ आकर उत्तराखंड के वन गुर्जरों की वास्तविक चिंताओं को हल करने के लिए वनाधिकार अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक स्थायी समाधान निकाले क्योंकि यह समुदाय निश्चित रूप से व्यवहार, जीवन शैली और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुजर रहा है; जिसकी वजह से उनके अस्तित्व को ही खतरा पैदा हुआ है। उनकी पारंपरिक जीवनशैली तथा प्रथाओं को सकारात्मक भावना से संरक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि वे इस पारिस्थितिकी के मुलनिवासी एवं अभिरक्षक हैं।

सन्दर्भ

1. आशेर मानशी (2018) वन गुर्जरः अ रिपीट ऑफ हिस्टोरिकल इन्जस्टिस डाउन टू अर्थ https://www.downtoearth.org.in/blog/forests/van-gujjars-a-repeat-of-historical-injustice-61655
2. मित्तल जान्हवी (2019) हु इज़ अफ्रेड ऑफ फ़ॉरेस्ट राईट्स एक्ट? दी ऑकलैंड इंस्टीट्यूट https://www.oaklandinstitute.org/blog/who-afraid-forest-rights-act
3. गुप्ता राधिका (2021) वन गुर्जरः पीपल ऑफ दी फॉरेस्ट ऑर नोव्हेयर? मोंगबे https://india.mongabay.com/2021/05/van-gujjars-people-of-the-forest-or-nowhere/
4. मेनन प्रणव (2021) लेट दी वन गुर्जर रिमैन नोमेडिक डाउन टू अर्थ https://www.google.com/amp/s/www.downtoearth.org.in/blog/environment/amp/let-the-van-gujjars-remain-nomadic-77115
5. दोंदे सुभाष (2021) सामुदायिक वानिकी के पार्श्वभूमि में वन अधिकार अधिनियम 2006ः एक समीक्षात्मक अध्ययन रिसर्च जर्नी, खंड 267A, पन्नेः167–174.

6. हम्जा मोहम्मद मीर एंड मेनन प्रणव (2022) हाऊ दी वन गुर्जर पर्सिव्ह दी वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन अमेंडमेंट एक्ट 2021 डाउन टू अर्थ https://www.google.com/amp/s/www.downtoearth.org.in/blog/forests/amp/how-the-van-gujjars-perceive-the-wildlife-protection-amendment-act-2021-81830